❑ आर0 एस0 पांडेय

भारतीय गणित का संक्षिप्त इतिहास

गणित को भारत में प्रारम्भ से ही बहुत महत्वपूर्ण विषय माना जाता रहा है। 'वेदांग ज्योतिष' (1000 ई0 पू0) में गणित की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है :-

यथा शिखा मयूराणां, नागाणां मणयो यथा
तद्वद्वेदांग शास्त्राणां, गणितं मूर्ध्नि वर्तते।

अर्थात् जिस प्रकार मयूरों की शिखाएं और सर्पों की मणियां शरीर में सबसे ऊपर मस्तक पर विराजमान हैं उसी प्रकार वेदों के सब अंगों तथा शास्त्रों में गणित शिरोमणि है।

भारतीय गणित के इतिहास का शुभारम्भ ऋगवेद से होता है—

वैदिक काल (1000 ई0 पूर्व तक) :

वेदों में संख्याओं और दार्शनिक प्रणाली का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋगवेद की एक ऋचा है :-

द्वादश प्रधयश्य क्रमेकं त्रिणि नभ्यामिक उतच्चिकेत
तस्मिन्त्सामकं त्रिशता न शंकवोऽर्पित षष्ठिर्न चलचलास।

इसमें द्वादश अर्थात् बारह, त्रिणि अर्थात् तीन, त्रिशति अर्थात् तीन सौ, षष्ठि अर्थात् साठ संख्याओं का प्रयोग दाशमिक प्रणाली के ज्ञान का स्पष्ट उदाहरण है।

इस काल में 'शून्य' (zero) और "दाशमिक स्थान मान" पद्धति का आविष्कार गणित के क्षेत्र में भारत की अभूतपूर्व देन है। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि शून्य का आविष्कार कब और किसने किया, किन्तु इसका प्रयोग वैदिक काल से होता रहा है। 'शून्य' और 'दाशमिक स्थान मान' की पद्धति आजकल सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत नारद विष्णु पुराण में त्रिस्कन्ध ज्योतिष के वर्णन प्रसंग में गणित विषय का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें (10°), दश, शत, सहस्त्र, अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्ब (दस अरब), महापद्म (दस खरब), शंकु (नील), जलधि (दशनील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शंख जो 10^{17} के मान के बराबार है) इत्यादि संख्याओं के बारे में बताया गया है कि ये संख्याएं उत्तरोत्तर दस गुनी हैं। इतना ही नहीं, इसमें गणित की अनेक संक्रियाओं- योग, व्यवकलन, गुणा एवं भाग, भिन्न, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, त्रैराशिक व्यवहार आदि का विशद वर्णन है।

अंकों को लिखने की दाशमिक स्थान मान पद्धति भारत से अरब गयी और अरब से पश्चिमी देशों में पहुंची। अरब के लोग । से 9 तक के अंकों को 'इल्म हिन्दसा' कहते हैं और पश्चिमी देशों में (0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9) को Hindu Arabic numerals कहा जाता है।

उत्तर वैदिक काल (1000 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 तक) :

1 : शुल्व एवं वेदांग ज्योतिष काल :

विभिन्न प्रकार की वेदियों और उन पर उपखंडों को सही-सही नापकर बनाने के प्रश्न को लेकर इस काल में रेखा गणित के सूत्रों का विकास एवं विस्तार किया गया जो 'शुल्व सूत्रों' के रूप में उपलब्ध हैं। शुल्व उस रज्जु (रस्सी) को कहते हैं जो यज्ञ की वेदी बनाने के लिए माप के काम आती थी।

दूरी मापने या पृथ्वी पर वृत्त खींचने में शुल्व का प्रयोग होता था। शुल्व का अर्थ है रज्जु या रस्सी। अत: वह गणित जो शुल्व की सहायता लेकर विकसित किया गया, उसे शुल्व विज्ञान या शुल्व गणित का नाम दिया गया। शुल्व का पर्यायवाची रज्जु होने के कारण इसे रज्जु गणित भी कहा गया जो आगे चलकर रेखागणित में परिणत हो गया। विभिन्न प्रकार की यज्ञ वेदियों के निर्माण में रज्जु की सहायता से पृथ्वी पर अभीष्ट दूरियां मापने के अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि की माप भी की जाती थी, इसीलिए इसकी सहायता से विकसित गणित का नाम क्षेत्रमिति, ज्यामिति तथा भूमिति भी पड़ गया। क्षेत्र, ज्या, भू का एक ही अर्थ है भूमि तथा मिति का अर्थ है मापन।

ज्यामिति को ग्रीक भाषा में ज्योमीट्री कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा में भी Geometry यथावत् प्रयुक्त होता है। कुछ लोगों का विचार है कि "ज्योमीट्री" ज्यामिति का अप्रभंश है।

ज्यामिति का महत्व बताते हुए एक प्राचीन जैन ग्रन्थ में कहा गया है- "ज्यामिति गणित का कमल है और शेष सब तुच्छ है।"

शुल्व काल की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है समकोण त्रिभुज का प्रमेय अर्थात् "कर्ण पर बना वर्ग शेष दो भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है।" यह प्रमेय पाइथागोरस से कई शताब्दियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व भारत में व्यापक रूप से प्रचलित था। यही नहीं शुल्व काल से पहले ही इस तथ्य की जानकारी हमारे देश के विद्वानों को थी क्योंकि तैत्तरीय संहिता (3000 ई0पू0) में एक तथ्य $39^2=36^2+15^2$ दिया हुआ है।

शुल्व काल के महान् गणितज्ञ, शुल्व सूत्र के रचयिता बोधायन ने लिखा है- **''दीर्घ चतुरश्रस्याक्षण्या रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यंगमानी च यत् पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति''**

अर्थात् दीर्घ चतुरश्र (आयत) की तिर्यंगमानी और पार्श्वमानी (लम्ब और आधार) भुजाएं जो दो वर्ग बनाती हैं, उनका योग अकेले कर्ण पर बने वर्ग के बराबर होता है। पाइथागोरस (540 ई0पू0) ने बोधायन से लगभग 450 वर्ष बाद इस तथ्य को प्रतिपादित किया। अतः इस प्रयोग को पाइथागोरस के स्थान पर 'बोधायन प्रमेय' कहना सुसंगत होगा।

बोधायन ने दो वर्गों के योग और अन्तर के बराबर वर्ग बनाने की विधि दी है और करणीगत संख्या का मान दशमलव के पांच स्थानों तक निकालने के लिए ''सूत्र'' भी बताया है जिसके द्वारा...

$$2 = 1 + 1/3 + 1/3.4 - 1/3.4.34$$

बोधायन ने अन्य करणीगत संख्याओं के भी मान दिये हैं। प्राचीन भारतीय ज्यामितिज्ञ अपने द्वारा अन्वेषित साध्यों की उपपत्ति नहीं देते थे। वे केवल सूत्र लिखते थे जो यथासंभव संक्षिप्त रूप में होते थे, जिसके कारण उनमें यत्र-तत्र अस्पष्टता भी आ जाती थी। यह संक्षिप्तता हिन्दू जाति के स्वभाव के अनुरूप थी जो कि उनकी अन्य प्राचीन कृतियों में भी परिलक्षित होती है।

इसी काल में ज्योतिष का भी विकास हुआ। (कालगणना) समय, नक्षत्रों की स्थिति और गति की गणना के लिए ज्योतिष गणित का विकास हुआ। वेदांग ज्योतिष (1000 ई0 पू0) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय ज्योतिषियों को योग, गुणा, भाग आदि का ज्ञान था। जैसे-

तिथिमेकादशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथि नक्षत्रमादिशेत॥

अर्थात् तिथि को 11 से गुणा करें, उसमें पर्व के भांश को जोड़ें और फिर नक्षत्र संख्या से भाग दें। इस प्रकार तिथि के नक्षत्र को बतावें।

सूर्य प्रज्ञप्ति काल :

जैन साहित्य में तत्कालीन गणित का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। वास्तव में जितने विस्तार से और स्पष्ट रूप से गणितीय सिद्धान्तों का विवेचन जैन साहित्य में किया गया है, वह जैन दर्शन का वेद के रहस्यवाद के स्थान पर ज्ञान को सामान्य लोगों की भाषा और स्तर तक पहुंचाने की प्रवृत्ति का स्पष्ट द्योतक है। इस काल की प्रमुख कृतियां 'सूर्यप्रज्ञप्ति' तथा 'चन्द्रप्रज्ञप्ति' (500 ई0पू0) जैन धर्म के प्रसिद्ध धर्म ग्रन्थ हैं। इनमें गणितानुयोग का वर्णन है। सूर्य प्रज्ञप्ति में दीर्घवृत्त का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ दीर्घ (आयत) पर बना परिवृत्त है जिसे परिमण्डल नाम से जाना जाता था। स्पष्ट है कि भारतीयों को दीर्घ वृत्त का ज्ञान मिनमैक्स (350 ई0पू0) से लगभग 150 वर्ष पूर्व हो चुका था। यह इतिहास ज्ञात न होने के कारण पश्चिमी देश मिनमैक्स को ही दीर्घवृत्त का आविष्कारक मानते हैं। उल्लेखनीय है कि भगवती सूत्र (300 ई0पू0) में भी परिमण्डल शब्द दीर्घवृत्त के लिए ही प्रयुक्त किया गया है जिसके दो प्रकार भी बताये गये हैं- 1 : प्रतरपरिमण्डल तथा 2 : घनपरिमण्डल।

गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों का श्लाघनीय योगदान रहा है। इन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में गणित के अनेक अध्ययन तत्वों का मीमांसात्मक विवेचन रोचक ढंग से उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है। उन्होंने संख्या - लेखन पद्धति, भिन्न त्रैराशिक व्यवहार तथा मिश्रानुपात, बीजगणितीय समीकरण एवं इनके अनुप्रयोग विविध श्रेणियां, क्रमचय, संचय, घातांक एवं लघुगणक के नियम, समुच्चय सिद्धान्त आदि अनेक विषयों पर विशद प्रकाश डाला है। समुच्चय सिद्धांत के अन्तर्गत परिमित अपरिमित, एकल समुच्चयों के अनेक उदाहरण दिये गये हैं। लघुगणक के लिए इन्होंने अर्द्धच्छेद, त्रिकच्छेद, चतुर्थच्छेद शब्दों का प्रयोग किया है जिनका अर्थ क्रमशः log2, log3, log4 है। जान नेपियर (1550-1617 ई0) के बहुत पहले लघुगणक का आविष्कार एवं विस्तृत अनुप्रयोग भारत में हो चुका था, जो एक सार्वजनीन सत्य है।

पूर्व मध्यकाल (500 ई0पू0 से 400 ई0पू0) तक :

इस काल में लिखी गई पुस्तकों ''वक्षाली गणित'', ''सूर्य सिद्धांत'' और ''गणितानुयोग'' के कुछ पन्नों को छोड़कर शेष कृतियां काल कवलित हो गयी, किन्तु इन पन्नों से और मध्य युग के आर्य भट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि के उपलब्ध साहित्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस काल में भी गणित का पर्याप्त विकास हुआ था। स्थानांग सूत्र, भगवती सूत्र और अनुयोगद्वार सूत्र इस युग के प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त जैन दार्शनिक उमास्वाति (135 ई0पू0) की कृति ''तत्वार्थाधिगम सूत्र भाष्य'' एवं आचार्य यतिवृषभ (176 ई0 के आसपास) की कृति ''तिलोयपण्णती'' भी इस काल के प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ हैं।

वक्षाली गणित में अंकगणित की मूल संक्रियाएं, दाशमिक अंकलेखन पद्धति पर लिखी हुई संख्याएं, भिन्न परिकर्म, वर्ग, घन, त्रैराशिक व्यवहार, इष्ट कर्म, ब्याज, रीति, क्रय-विक्रय संबंधी प्रश्न, सम्मिश्रण संबंधी प्रश्न, आदि का विस्तृत विवरण है। प्रश्नों के उत्तर के परीक्षण के नियम भी दिए गये हैं। वक्षाली गणित इस बात का प्रमाण है कि भारत में 300 ई0पू0 भी वर्तमान अंकगणितीय विधियों का व्यापक प्रयोग हो रहा था।

स्थानांग सूत्र में 5 प्रकार के अनन्त की तथा अनुप्रयोग में 4 प्रकार के प्रमाप (Measure) की बात कही गई है। इस ग्रन्थ में क्रमचय (Permutation) एवं संचय (Combination) का भी वर्णन है, जिनको क्रमशः भंग और विकल्प के रूप में जाना गया है। उल्लेखनीय है कि भगवती सूत्र में न (n) प्रकारों में से 1-1, 2-2, प्रकारों को एक साथ लेने से जो संचय (Combination) बनते हैं, उन्हें एकक, द्विक संयोग आदि कहा है और उनका मान न, न (न-1)/2, आदि बताया गया है जो आज भी प्रचलित है।

सूर्य सिद्धांत में वर्तमान त्रिकोणमिति का विस्तृत वर्णन मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें ज्या (Sine), उत्क्रम ज्या (Verse-Sine) तथा कोटिज्या (Cosine) के मान का उल्लेख है। ध्यान रहे कि यही ज्या व जीव अरब जाकर जेब (Jaib) हो गयी जिसका शब्दिक अनुवाद लैटिन में जेब (पाकिट) अर्थात् Sinus किया गया। यही Sine शब्द आगे चलकर Sinus हो गया। इसी प्रकार कोटिज्या (Cosine) हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि त्रिकोणमिति के विस्तार में भारतीयों का बहुमूल्य योगदान रहा है। त्रिकोणमिति शब्द शुद्ध भारतीय है जो कालान्तर में Trigonometry हो गया। भारतीयों ने त्रिकोणमिति का प्रयोग ग्रहों की स्थिति, गति आदि के निर्धारण में किया।

इस काल में बीजगणित का विस्तार गणित के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन था। वक्षाली पाण्डुलिपि में इष्ट कर्म (Rule of false position) में। अथवा 100 के स्थान पर अव्यक्त राशि कल्पित की गयी है। गणितज्ञों की मान्यता है कि इष्टकर्म ही बीजगणित के विस्तार का आदि स्रोत है। भारतीयों ने धन, ऋण जो चिन्ह मात्र हैं, उनके जोड़, घटाना, गुणा, भाग आदि के लिए नियमों को विकसित किया। महान् गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त (628 ई0पू0) ने बताया कि "धन संख्या और ऋण संख्या का गुणनफल ऋण संख्या, दो ऋण संख्याओं का गुणनफल धन संख्या तथा धनसंख्या और धनसंख्या का गुणनफल धन संख्या होती है।"

भारतीयों ने वर्ग, धन आदि घातों (Powers) के लिए संकेतों का प्रयोग किया। वही संकेत आज भी प्रयुक्त किये जाते हैं। अनुयोग द्वार सूत्र में कुछ बीजगणितीय घात नियम दिये हुए हैं। जैसे-

क का प्रथम वर्ग = $क^२$
क का द्वितीय वर्ग = $(क^२)^२ = क^४$
क का तृतीय वर्ग = $(क^४)^२ = क^८$
क का प्रथम मूल = क = क 1/2
क का द्वितीय मूल = क = क 1/4 आदि।

नि:संदेह अंकगणित की भांति बीज गणित भी भारत से अरब पहुंचा। अरब देश के गणितज्ञ (AL-KHOWARIZMI) अपनी पुस्तक "अलजब्र" व "अल मुकाबला" में भारतीय बीजगणित पर आधारित विषय का प्रतिपादन किया है। उनकी पुस्तकों के नाम पर इस विषय का नाम (Algebra) पड़ गया।

जहां तक अन्य राष्ट्रों की बात है, हम पाते हैं कि "यूनानी गणित" के स्वर्णयुग में आधुनिक अर्थ में अलजबरा का नामोनिशान तक न था। Classical Period में यूनानी लोग बीजगणित के अनेक कठिन प्रश्नों को हल करने की योग्यता रखते थे, परन्तु उनके सभी हल ज्यामितीय होते थे। बीजगणितीय हल वहां सर्वप्रथम Diaphantus (275 ई0 लगभग) के ग्रन्थों में पाये गये हैं। उस समय भारतीय लोग बीज गणित में अन्य राष्ट्रों से बहुत आगे थे।

मध्यकाल या स्वर्णयुग (400 ई0 से 1200 ई0 तक) :

इस काल को भारतीय गणित का स्वर्णयुग कहा जाता है, क्योंकि इस काल में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य, भास्कराचार्य जैसे अनेक श्रेष्ठ एवं महान् गणितज्ञ हुए जिन्होंने गणित की सभी शाखाओं को, जिनका प्रयोग हम आज कर रहे हैं, विस्तृत व स्पष्ट रूप प्रदान किया। वेदों में जो सिद्धांत व विधियां सूत्र रूप में हैं, वे इस काल में अपनी पूर्ण संभावनाओं के साथ जन साधारण के सामने आईं। भारतीय गणित के इस स्वर्णयुग की स्मृति में भारत ने अंतरिक्ष में जो प्रथम उपग्रह स्थापित किया उसका नाम आर्यभट्ट के नाम पर रखा गया। इस काल के कतिपय महान् गणितज्ञों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त वर्णन अग्रवत् है।

आर्यभट्ट (499 ई0 - प्रथम) :

ये पटना के निवासी थे। आर्यभट्ट ने अपनी पुस्तक 'आर्यभट्टीय गणितपाद' के 332 श्लोकों में गणित के महत्वपूर्ण एवं मूलभूत सिद्धांतों को साररूप में कह दिया है। आर्यभट्टीय के प्रथम दो पादों में गणित तथा अंतिम दो पादों में ज्योतिष का विवरण है। प्रथम पाद दशमीतिका में बड़ी-बड़ी संख्याओं को वर्णमाला के अक्षरों द्वारा निरूपित करने की विधि भी बताई गयी है।

इसके द्वितीय पाद "गणित पाद" में अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति के अनेक कठिन प्रश्नों का समावेश है। बीजगणित में साधारण तथा वर्गीय समीकरण कुटक अर्थात् अनिर्णीत समीकरण का विस्तृत विवरण है। आर्यभट्ट ने त्रिकोणमिति में सर्वप्रथम व्युत्क्रम ज्या का प्रयोग किया जो बाद में पाश्चात्य जगत में (Verse sine) के नाम से जाना जाने लगा। रेखा गणित के क्षेत्र में इन्होंने TT का मान दशमलव के चार स्थानों तक 3.1416 ज्ञात किया जो आज भी सही माना जाता है। इन्होंने बताया कि 20,000 इकाई व्यास वाले वृत्त की परिधि का मान 62,832 इकाई होता है अर्थात्...

$$TT = 62832/20,000 = 3.1416$$

अंकगणित के क्षेत्र में भी इन्होंने वर्गमूल एवं घनमूल ज्ञात करने की विधियों एवं त्रैराशिक नियम का भी उल्लेख किया है। यह हर्ष की बात है कि सबसे पहले आर्य भट्ट ने ही स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया कि पृथ्वी गतिशील और सूर्य स्थिर है। जिसे पश्चिम में कोपरनिकस ने 1100 वर्षों बाद 16वीं शताब्दी में स्वीकार किया और 1642 में गैलीलियो को इसी बात पर अंधा किया गया।

वराहमिहिर (550 ई) :

ये आर्यभट्ट के बाद महान् गणितज्ञ एवं दार्शनिक थे। इनके ग्रन्थ पंच सिद्धान्तिका, वृहत्संहिता, वृहज्जातक हैं। वराहमिहिर द्वारा रचित 'वाराहशुल्वसूत्र' इनकी प्रसिद्ध कृति है। इसमें गणित के सभी अंगों पर समुचित प्रकाश डाला गया है। वेदियों के निर्माण संबंधी बीज के बहुत से सूत्र इसमें हैं।

भास्कर (प्रथम) (600 ई0) :

भास्कर ने अपनी पुस्तक महाभास्करीय, आर्यभट्टीय भाष्य और लघु भास्करीय में आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को और विकसित एवं विस्तृत किया। कुटक (अनिर्धार्य) समीकरण पर इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है।

ब्रह्मगुप्त (628 ई0) :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मगुप्त ने 'बाहमस्फुट सिद्धांत' के 25 अध्यायों में से 2 अध्यायों में गणितीय सिद्धांतों एवं विधियों का विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने गणित की 20 क्रियाओं तथा 8 व्यवहारों पर प्रकाश डाला। बीजगणित में समीकरण-साधनों के नियमों का उल्लेख किया तथा अनिर्णीत द्विघातीय समीकरण का समाधान भी बताया। जिसे आयलर ने 1764 ई0 में और लांग्रेज ने 1768 ई0 में प्रतिपादित किया। ब्रह्मगुप्त ने समखात (Prisn) और सूची (Cone and conical column)के घनफल ज्ञात करने की विधि ज्ञात की। ब्रह्मगुप्त ने गुणोत्तर श्रेणी का योग ज्ञात करने की विधि और समकोण त्रिभुज के शुल्व सूत्र का विस्तृत वर्णन भी किया है। ब्रह्मगुप्त ने सर्वप्रथम अनन्त की कल्पना की और बताया कि कोई भी ऋण अथवा धनराशि शून्य से विभाजित होने पर अनन्त हो जाती है।

महावीराचार्य (850 ई0) :

महावीराचार्य जैन धर्मावलम्बी थे। ये अमोघवर्ष-नृपतुंग नामक राष्ट्रकूट नरेश के सभासद थे। अमोघवर्ष नृपतुंग मैसूर तथा अन्य कन्नड़ क्षेत्रों के शासक थे तथा नवीं शती के पूर्वार्द्ध में सिंहासनारूढ़ हुए थे। अत: अनुमान लगाया जाता है कि महावीराचार्य 850 ई0 के लगभग हुए होंगे। महावीर ने 'गणितसार संग्रह' नामक अंकगणित के वृहत् ग्रन्थ की रचना की। इसमें अंकगणित का विधिवत् वर्णन किया गया है तथा उसमें संग्रहीत प्रश्न अत्यन्त मनोरंजक हैं। उन्होंने ल0स0अ0 का आधुनिक नियम ज्ञात किया जिसका यूरोप में पहली बार प्रयोग 1500 ई0 में किया गया। इन्होंने वृत्तान्तर्गत चतुर्भुज तथा दीर्घ वृत्त के क्षेत्रफल ज्ञात करने के सूत्रों का निर्गमन भी किया।

श्रीधराचार्य (850 ई0) :

श्रीधराचार्य ने अंकगणित पर नवशतिका तथा त्रिशतिका, पाटीगणित और बीजगणित पुस्तकों की रचना की। इनकी रचना शैली अत्यन्त सरल, संक्षिप्त तथा हृदयग्राही है। अतएव इन ग्रन्थों का अत्यधिक प्रचार हुआ और सम्पूर्ण भारतवर्ष में इनका पठन-पाठन हुआ। इनकी बीजगणित की पुस्तक अप्राप्य है किन्तु इनका द्विघात समीकरण हल करने का सूत्र जो "श्रीधराचार्य विधि" कहलाता है, आज भी व्यापक रूप से व्यवहृत हो रहा है। इनकी पुस्तक "पाटी गणित" का अनुवाद अरब में "हिसाबुल तरब्त" नाम से हुआ।

आर्यभट्ट द्वितीय (950 ई0) :

आर्य भट्ट (द्वितीय) महाराष्ट्र के निवासी थे। उन्होंने महासिद्धांत नामक एक ग्रन्थ लिखा जिसके एक अध्याय में अंकगणित तथा दूसरे अध्याय में प्रथम घात वाले अतिर्धार्य समीकरण (कूटक) का प्रतिपादन किया। गोले के पृष्ठफल का शुद्ध मान कदाचित् इसी ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ में π का मान 22/7 लिया गया है जो आज भी सर्वमान्य है।

श्रीपति मिश्र (1039 ई0) :

श्रीपति मिश्र भी महाराष्ट्र के निवासी थे। इन्होंने "सिद्धान्तशेखर" एवं "गणततिलक" की रचना की। इन्होंने क्रमचय (Permutation) और संचय (Combination) पर विशेष कार्य किया। इनकी पुस्तक गणित तिलक का प्रारम्भिक भाग ही प्राप्त हो सका है, शेष भाग अप्राप्य है।

नेमीचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (11वीं शती) :

चक्रवर्ती की प्रसिद्ध पुस्तक 'गोम्मटसार' है जिसके दो भाग हैं, कर्मकाण्ड एवं जीव काण्ड। दोनों में जीवराशियों, उनके कर्मों, आस्तवबंध, निर्जरा, सार्वत्रिक समुच्चयों, एकैकी संगति, सक्रमबद्धी प्रमेय (Well ordering theorems) आदि की चर्चा है। एकैकी संगति विधि का प्रयोग विदेशों में गैलीलियो एवं जार्ज कैण्टर (1845-1918) द्वारा कई शताब्दियों बाद किया गया।

भास्कराचार्य द्वितीय (1114 ई0) :

मध्ययुग के अन्तिम तथा अद्वितीय गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वितीय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "सिद्धान्त-शिरोमणि", "लीलावती", "बीजगणित", "गोलाध्याय", "गृहगणितम्" एवं "करण कुतूहल" में गणित की विभिन्न शाखाओं अंकगणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति आदि को एक प्रकार से अंतिम रूप दिया गया है। वेदों में जो सिद्धांत सूत्र रूप में थे, उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति भास्कराचार्य की रचना में हुई है। इनमें ब्रह्मगुप्त द्वारा बतायी गई 20 प्रक्रियाओं और 8 व्यवहारों का अलग-अलग विवरण और उनमें प्रयोग में लायी जाने वाली विधियों का प्रतिपादन सुव्यवस्थित और सुसाध्य रूप में किया गया है।

लीलावती में संख्या पद्धति का जो आधारभूत और सृजनात्मक प्रतिपादन किया गया है, वह आधुनिक अंकगणित और बीजगणित की रीढ़ है। लीलावती के काव्यपूर्ण सरल प्रश्न आज भी कला और विज्ञान के संगम के अनूठे उदाहरण हैं। भास्कराचार्य द्वितीय द्वारा बीजगणित के अनिर्णीत समीकरणों के समाधान के लिए प्रयुक्त चक्रवात विधि की प्रसिद्ध विद्वान हेंकल ने भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है, "यह निश्चय रूप से संख्या सिद्धांत में लाग्रांज से पूर्व सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।" इसी नियम का फरमट ने 1657 में प्रयोग किया।

अपनी पुस्तक "सिद्धान्त शिरोमणि" में भास्कराचार्य द्वितीय ने त्रिकोणमिति का विस्तृत उल्लेख किया है। ज्या, कोज्या, उत्क्रमज्या के विभिन्न सम्बन्ध और तालिका, अवकलन, अणुचलन-कलन (Infiritesimal Calcules) तथा समाकलन (Integration) का भी प्रतिपादन किया। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की भी पूरी जानकारी उन्हें थी। उन्होंने लिखा है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जो वस्तुओं को खींचकर अपने धरातल पर लाती है।

उत्तर मध्यकाल (1200 ई0 से 1800 ई0 तक) :

भास्कराचार्य द्वितीय के बाद गणित में मौलिक कार्य अधिक नहीं हो सका। प्राचीन ग्रन्थों पर टीकाएं ही उत्तर मध्यकाल की मुख्य देन हैं। केरल के गणितज्ञ नीलकण्ठ ने 1500 ई0 में एक पुस्तक में ज्या x का मान निकाला :-

$$\text{ज्या } x = x - x/3 + x/5$$

मलयालम पाण्डुलेख "मुक्तिभास" में भी यह सूत्र दिया गया है। जिसे आज हम ग्रेगरी श्रेणी के नाम से जानते हैं।

इस काल के गणितज्ञों एवं उनकी कृतियों का विवरण अग्रांकित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है –

नारायण पण्डित (1356 ई0) :

नारायण पण्डित ने अंकगणित पर ''गणितकौमुदी'' नामक एक वृहद् ग्रंथ की रचना की। इसमें अनेक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। जिनमें क्रमचय संचय, अंक विभाजन (Partition of numbers) तथा मायावर्ग (Magic Squares) प्रमुख हैं। यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

नीलकण्ठ (1587) :

नीलकण्ठ ने ''ताजिकनीलकण्ठी'' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें ज्योतिष गणित का प्रतिपादन किया गया है।

कमलाकर (1608 ई0) :

कमलाकर ने 'सिद्धान्त तत्व विवेक' नामक ग्रंथ की रचना की।

सम्राट जगन्नाथ (1731 ई0) :

सम्राट जगन्नाथ ने ''सम्राट सिद्धान्त'' तथा ''रेखागणित'' नाम की दो पुस्तकें लिखीं। रेखा-गणित की वर्तमान शब्दावली अधिकांशत: इसी पुस्तक पर आधारित है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त इस काल में केरलीय गणितज्ञों में संगम ग्राम में जन्मे माधव (1350-1410) 'युक्तिभाषा' नामक गणित ग्रंथ के लेखक ज्येष्ठ देव (1500-1610 ई0) तथा 'क्रियाक्रमकरी' नामक लीलावती व्याख्या के रचयिता शंकर पारशव (1500-1560 ई0) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान काल (1800 ई0 के पश्चात्) :

वर्तमान काल के कुछ प्रमुख गणितज्ञों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

नृसिंग बापू देव शास्त्री (1831 ई0) :

नृसिंग बापू देव शास्त्री ने भारतीय एवं पाश्चात्य गणित पर पुस्तकों का सृजन किया। इनकी पुस्तकों में रेखागणित, त्रिकोणमिति, सायनवाद तथा अंकगणित मुख्य हैं।

सुधाकर द्विवेदी :

सुधाकर द्विवेदी ने 'दीर्घ वृत्त लक्षण', 'गोलीय रेखा गणित', 'समीकरण मीमांसा', 'चलन कलन' आदि अनेक पुस्तकों की रचना की। साथ ही ब्रह्मगुप्त एवं भास्कर की पुस्तकों पर टीकाएं लिखकर सामान्य जनता के लिए सुलभ कराया।

रामानुजम् (1889 ई0) :

सूत्र में गणितीय एवं अन्य सिद्धांतों को लिखने एवं सिद्ध करने की वैदिक परम्परा के आधुनिक युग के महान् गणितज्ञ रामानुजम् हैं। उनकी श्रेष्ठता इसी से प्रमाणित है कि उनके द्वारा प्रतिपादित 50 प्रमेयों में से एक दो को सिद्ध करने में ही गणितज्ञों एवं शोधकर्त्ताओं को वर्ष पर्यन्त दत्तचित्त होकर परिश्रम करना पड़ा। कुछ प्रमेय अभी तक सिद्ध नहीं किये जा सके हैं। उनकी कृति 'रामानुजम् डायरी' शीर्षक से जन्मशती वर्ष में प्रकाशित हुई है।

स्वामी भारती कृष्णतीर्थजी महाराज (1884-1960 ई0) :

महान् गणितज्ञ एवं दार्शनिक जगद्गुरु शंकराचार्य भारती कृष्णतीर्थजी आधुनिक युग में वैदिक गणित के प्रधान भाष्यकार हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक ''वैदिक गणित'' में वैदिक सूत्रों को पुन: प्रतिपादित किया है और उनमें निहित सिद्धांतों और विधियों को इतनी सरल, सुग्राह्य एवं सुस्पष्ट भाषा में प्रस्तुत किया है कि गणित का एक साधारण विद्यार्थी भी उसे आत्मसात् कर गणित के जटिलतम प्रश्नों को अत्यल्प समय में हल कर सकता है। उनकी पुस्तक वैदिक गणित पर एक प्रामाणिक ग्रंथ है। स्वामीजी ने अपनी इस अनुपम कृति के माध्यम से वैदिक गणित में छिपी हुई अद्भुत क्षमता से परिचय कराकर गणित के केवल सामान्य विद्यार्थी को ही नहीं अपितु अधिकारी विद्वानों के अन्त:करण को भी झंकृत कर दिया है। इन्होंने हमें सर्वथा नवीन दृष्टि देकर वैदिक गणित पर शोध करने तथा उसका उपयोग करने के लिए विवश कर दिया है।

सह शिक्षक– श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org